अन्तर्राष्ट्रीय वेदान्त मिशन की मासिक ई - पत्रिका
वेदान्त पीयूष
वर्ष २१
नवम्बर - २०२१
प्रकाशन - ११

सम्पादिका :

स्वामिनी अमितानन्द सरस्वती

वेदान्त पीयूष

नवम्बर २०२१

प्रकाशक

आन्तराष्ट्रिय वेदान्त आश्रम,

ई - २९४८, सुदामा नगर

इन्दौर - ४५२००९

Web : https://www.vmission.org.in

email : vmission@gmail.com

ॐ

सदाशिवसमारम्भाम्

शंकराचार्य मध्यमाम्

अस्मदाचार्य पर्यन्ताम्

वन्दे गुरु परम्पराम्

विषय सूचि

नवम्बर 2021

परिच्छिन्न इवाकाशात्
तन्नाशे सति केवलः।
स्वयं प्रकाशते ह्यात्मा
मेघापायेंऽशुमानिव।।

(आत्मबोध श्लोक : 4)

अज्ञान के कारण ही आकाशवत् असीम
आत्मा सीमाओं से युक्त प्रतीत होती है।
अज्ञान का नाश होने पर समस्त भेदों
से रहित अपरिच्छिन्न आत्मा उसी
प्रकार से प्रकाशित होती है;
जैसे बादलों के हट़ने पर
सूर्य प्रकाशित होता है।

पूज्य गुरुजी का सन्देश

आप्तकामो भव!

कामना का अस्तित्व अपूर्ण का लक्षण है। अपूर्णता ही कामना के रूप में व्यक्त होती है। कामना के पीछे दो प्रेरणा की सम्भावना हो सकती है। १. अहं/जीवभाव की संतुष्टि। २. अहं का विनाश। हमने पहले अन्जाने में स्वयं को असंतुष्ट बना लिया। उसके उपरान्त स्पष्ट पसंद-नापसंद से युक्त होते है। यह संकुचित जीव के द्वारा निर्मित भ्रममात्र है। हर कामना में तृप्ति व कृतार्थता की आकांक्षा होती है। विविध कामनापूर्ति को ही सुख व सफलता का पर्याय मान लेते है। किन्तु उससे क्षण-दो क्षण के लिए ही सुख की झलक मिलती है। वेदान्त का जीवन दर्शन तद्विपरीत कि तत्ताद के अभाव में, अपने आपमें पूर्ण हो सकते है।

आप्तकामो भव!

वस्तुतः हम संतुष्टि के धाम है, हम में अपूर्ण अहं ही नहीं है, अतः पूर्णता कुछ करने, न करने में आश्रित नही। हर व्यक्ति ब्रह्मस्वरूप है, उसे पूर्णता के लिए कुछ भी नहीं करना है।

कामना अत्यन्त शक्तिशाली होती है, वही मानों जीवन को संचालित करती है; न कि अन्य शक्तियां। उसे भगवान ने महाशन, महापाप्मा बताया है। हम व हमारी कल्पनाशक्ति के द्वारा कामना तथा उससे दुनिया बनी है। श्रुति ने बताया कि कामना के अनुरूप जायते तत्र तत्र। इस कामना के सामर्थ्य को हमें देखना चाहिए। तथा उसके पीछे विद्यमान अपनी धारणाओं के बारे में निश्चय करना चाहिए। वेदान्त ज्ञान के लिए उन समस्त धारणाओं को नकारना पडेगा। अविद्याा ही कामना की जननी है।

'अपेक्षा ही समस्त दुःखों की जननी है।'

आप्तकामो भव!

अविद्या+काम+कर्म ही बन्धन की ग्रंथि है। अज्ञानजनित कामना ही हमारे जीवन की परिस्थितियां देती हैं। इन समर्थ कामना के हम ही स्वामी है–ऐसा ज्ञान रखनेवाला ही वेदान्तज्ञान प्राप्त करता है। अहं की संतुष्टि के लिए की जानेवाली कामना कभी मुक्ति नहीं देती। जो कामना पूर्णता से उद्भूत होती है, वह सब के लिए कल्याणकारी व आशीर्वादरूपा होती है। ईश्वर भी कामना से ही सृष्टि करते हैं।

हमें कामना में भेद देखना चाहिए कि एक अहं की संतुष्टि का हेतु, दूसरी अन्य के लिए आशीर्वादरूपा। दोष कामना का नहीं, उसके पीछे मोह दोषवान है। इसलिए धर्म अविरुद्धो कामना को विभूति बताया। जो पूर्णता से युक्त कामना करता है उसमें कोई पराधीनता नहीं। वह आप्तकाम ही कृतात्मा है, जिसकी कामना विलय हो गई।

वेदान्त लेख
अहम् ब्रह्मास्मि

संसार से मुक्ति

संसार से मुक्ति

हर मनुष्य के जीवन में सतत अनुकूल वा प्रतिकूल परिस्थिति की प्राप्ति हुआ करती है। हमारी चाह सदैव अनुकुलता की प्राप्ति की बनी रहती है। जीवन में अनुकुलता प्राप्त होने पर हर्षित हो जाते हैं, तो प्रतिकुल परिस्थिति में शोकाकुल हो जाते हैं। हर्ष-शोक का अस्तित्व होना ही समत्व का अभाव दर्शाता है। हर्ष-शोक के क्षणों में उचित-अनुचित का भेद करने में असमर्थ हो जाते हैं, बुद्धि में अन्धकार का ही साम्राज्य दिखाई पड़ता है। विपरीतज्ञान से युक्त होकर धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म मान लेते हैं। यह राजसी ज्ञान से युक्त होना है। विविध परिस्थितियां अनुकुल और प्रतिकुल आदि रूप से बदलती सी दिखाई पड़ती है।

संसार से मुक्ति

हम तत्-तद् परिस्थिति, वस्तु, व्यक्ति को अत्यधिक महत्व देते हैं। किन्तु उन विविध परिस्थितियों में विद्यमान कर्ता भोक्ता जीव एक ही रहता है। उसकी ओर कभी ध्यान ही नहीं देते हैं। जब कि बाह्य परिस्थिति महत्वपूर्ण नहीं होती है। किन्तु उसके आधारभूत कर्ता की प्रेरणा ही हर्ष-शोक के लिए हेतुभूत हुआ करती है। कर्ता स्वकेन्द्रिता से युक्त होता है, तब प्रत्येक कार्य और परिस्थिति अहं की संतुष्टि से प्रेरित, उसे ही केन्द्र में रखकर हुआ करती है।

ऐसे में उस कर्ता में तीव्र अपेक्षाओं का अस्तित्व हुआ करता है। जब जब अपेक्षा आहत होती सी दिखाई पड़ती है, तब तब मन खिन्नता से युक्त होकर शोक के सागर में डूब जाता है। यदि अपेक्षा की पूर्ति हो जाती है, तो स्वयं को ही उसका कर्ता-धर्ता मानकर अभिमान से युक्त होने लगता है। यह उसके लिए हर्ष का कारण भी बन जाता है।

संसार से मुक्ति

सर्व प्रथम तो इसके माध्यम से जीव का यह धरातल दिखाई पड़ता है कि वह मन बहुत ही सतही (छिछोला) है, जिससे थोड़ी सी अनुकुलता में हर्ष की बाढ़ से विवेक का बांध ही मानो टूट सा गया। प्रतिकुलता मे भी जगत तथा अपने बारे में मोह दिखाई देता है। जगत के विषयों के प्रति अत्यन्त महत्व की बुद्धि विद्यमान है। वह एक ऐसे क्षुद्र अहं के स्तर पर जीता है, जिसकी दीवारें अत्यन्त मजबूत हैं। प्रत्येक परिस्थिति को इस स्वकेन्द्रित 'मैं' के धरातल पर खड़े रहकर ही नापा जा रहा है। अतः जीवन में किसी कार्य के सम्पन्न होने पर, अथवा पूर्व कर्मवशात् परिस्थिति अनुकुल होने पर उसका कर्ता-धर्ता स्वयं को ही मान लेता है। जिससे अभिमान की वृद्धि होती है। यदि

'हर्ष और शोक का अस्तित्व समत्व का अभाव दर्शाता है।'

संसार से मुक्ति

कार्य में विफलता होती है और परिस्थिति प्रतिकूल होने लगती है, तब आत्मावलोकन होने के बजाय बाह्य निमित्त को ही दोषी मानने लगता है। इस वजह से उन निमित्तों के प्रति द्वेष उत्पन्न होता है।

इस तरह उनका जीवन हर्ष और शोक की अतियों में ही बटा रहता है। इस वजह से अनुचित और अधर्मयुक्त निर्णय के आधार पर प्रतिक्रियाएं हुआ करती है। यह जीवन में सदैव सन्ताप और दुःख को ही बढ़ावा देता है। इन समस्याओं से मुक्ति के लिए सर्व प्रथम प्रत्येक परिस्थिति को प्रभु का प्रसाद जानें तथा अपने आपको ईश्वर के हाथों में निमित्त मात्र ही जाने। जैसे जैसे प्रसाद बुद्धि दृढ़ होगी वैसे वैसे जगत के प्रति महत्व बुद्धि कम होती जाएगी। तथा ईश्वर के हाथों में स्वयं को निमित्त जानने पर अभिमान

'संकुचित अहं ही संसार का हेतु है।'

संसार से मुक्ति

शिथिल होगा। इस प्रकार की दृष्टि जगत के मिथ्यात्वनिश्चय को दृढ़ करती है। जगत के प्रति उपेक्षणीय अर्थात् स्वप्नवत् दृष्टि होती है, तब मनुष्य बहिर्मुखता छोड़कर अन्तर्मुख होकर आत्मावलोकन करना आरम्भ करता है और अपने मन को गहराई से समझने में समर्थ होता है।

ऐसे में अपने प्रत्येक विचार और कर्म के उपर विचार करते हुए यह देखना चाहिए कि सब समस्याएं संकुचित अहं की वजह से तथा उसे अत्यधिक महत्व देकर, उसके लिए जीने की वजह से हैं। अत: उसकी समाप्ति के लिए अन्तत: गुरु के चरणों में बैठकर आत्म-अनात्म विवेक रूप वेदान्तज्ञान प्राप्त करके, अपने आपको जगत की अधिष्ठानभूत, शाश्वत दिव्य सत्ता जानकर उस ज्ञान में स्थिर हो जाना चाहिए।

यूं तो गुजर रहा है...

यूं तो गुजर रहा है हर एक पल खुशी के साथ
फिर भी कोई कमी सी है क्यूं जिन्दगी के साथ।
रिश्ते वफाएं दोस्ती सब कुछ तो पास है,
क्या बात है पता नहीं दिल क्यूं उदास है
हर लम्हा हसीन है नई दिलकशी के साथ,
फर भी कोई कमी सी है.....

चाहत भी है सुकून भी है, दिलबरी भी है
आंखों में ख्वाब भी है लबों पर हसीं भी है
दिल को नहीं है कोई शिकायत किसी के साथ..
फर भी कोई कमी सी है.....

सोचा था जैसा वैसा ही जीवन तो है मगर
अब और किस तलाश में बेचैन है नजर
कुदरत भी मेहरबां है दरियादिली के साथ....
फर भी कोई कमी सी है.....

दृग्दृश्यविवेक

श्रुतिस्मृतिपुराणानां आलयं करुणालयम्।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम्।।

भिद्यते हृदयग्रन्थिः
छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि
तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

'माया से परे इस दिव्य तत्त्व का दर्शन होने पर हृदय में स्थित अविद्या तथा समस्त कर्मों का क्षय हो जाता है।'

दृग्दृश्य विवेक

आचार्य इस अन्तिम श्लोक में ज्ञान की फलश्रुति बता रहे हैं। इस गंथ का आरम्भ दृष्टा और दृश्य के विवेक से किया गया। साथ ही बताया कि संसार का कारण दृष्टा और दृश्य अर्थात् सत्य और असत्य का अविवेक ही है। अविद्या ही समस्त संसार की जननी है।

वस्तुत: हम सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। किन्तु अज्ञान की वजह से विपरीत धारणा से युक्त होते है। अपने अन्दर अज्ञान की वजह से दो धरातल पर के भ्रम होते है। १. दृश्य विषयक तथा २. दृष्टा विषयक। सर्व प्रथम दृष्टा विषयक भ्रम होता है कि जहां स्वयं सच्चिदानन्द, सर्व साक्षी चैतन्यस्वरूप होते हुए भी अपने आपको

दृग्दृश्यविवेक

संकुचित जीव मान लेते हैं। उसके उपरान्त दृश्य उपाधि से तादात्म्य करके दृश्य उपाधि के धर्मों को अपने पर आरोपित कर लेते हैं। जीव संकुचिता से युक्त अपूर्ण होने के कारण हम अपूर्ण ही है - इस धारणा की वजह से अपूर्णता को दूर करने की कामना से युक्त

'देह के धर्मों का निषेध ही देहात्मबुद्धि की समाप्ति अभिप्राय है।'

होते हैं। दूसरा भ्रम दृश्य विषयक होता है। इस दृश्य जगत को सत्य व उसे ही सुख का स्रोत मानने लगते हैं। उसके उपरान्त तत्-तत् विषयक कामना से युक्त होते हैं। इस प्रकार अविद्या ही कामना की जननी होती है।

कामना से युक्त होने के उपरान्त अब किसी न किसी कर्म का आश्रय लेने को विवश होते हैं। इस प्रकार संकुचित कर्ता-भोक्ता जीव बनकर सतत संसार की यात्रा करते रहते हैं। यह

दृग्दृश्यविवेक

अविद्या-काम और कर्म ही हृदयग्रंथि बनती है। जब अपने अन्दर कमी से युक्त होकर प्रेरित होते हैं, और किसी विषय का भोग वा अनुभव करते हैं, तो उस विषयक राग वा द्वेष के संस्कार उत्पन्न होते है। संस्कार के वशीभूत होकर जीवन प्रवाहित होता है; जहां अपनी कोई स्वतंत्रता नहीं होती है। यह सिलसिला जन्म-जन्मान्तरों तक चलता ही रहता है।

इस हृदयग्रंथि का जबतक भेदन नहीं होता है, तबतक संसारयात्रा अनवरत चलती रहती है। उससे मुक्ति का एक मात्र उपाय उसके मूल कारण अविद्या का नाश होना अर्थात् समस्त उपाधि से उत्पन्न देशादि की परिच्छिन्नता से परे अपने सच्चिदानन्द ब्रह्म स्वरूप सत्य को जानकर उसमें स्थित होना है।

दृग्दृश्यविवेक

जब कर्मक्षेत्र में रहते हुए ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करते हुए अन्त:करण शुद्ध सात्विक होता है, जीवन के रहस्यों को समझने की, तथा बन्धन से मुक्ति की उत्कण्ठा होती है। तब गुरु के श्रीचरणों में बैठकर दृष्टा-दृश्य का, आत्म-अनात्म का विवेक करने पर अपने पर से उपाधि के धर्मों का निषेध होता है। यह विवेक अन्त: और बाह्य अर्थात् दृष्टा के और जगत के धरातल पर किया जाना है। उपाधि के धर्मों का निषेध होने पर अपना सच्चिदानन्द स्वरूप स्पष्ट होता है। इस प्रकार अध्यारोपों

'जीव का अस्तित्व प्रारब्धकर्म पर्यन्त बना रहता है।'

को समझकर अध्यारोप-अपवाद की प्रक्रिया से अज्ञान नष्ट होकर परं तत्त्व का साक्षात्कार होता है। साथ ही अविद्या और उससे जनित समस्त कामनादि रूप ग्रंथि का भेदन होता

है। कामना का अस्तित्व तब तक ही रहता है कि जब तक अपने आपको हम संकुचित, अपूर्ण जीव मानते हैं। अपनी पूर्णस्वरूपता का साक्षात्कार ही समस्त कामनाओं से मुक्त करता है। कामना ही अपने अन्दर भोक्तृत्व को जगाकर कर्म के लिए प्रेरित करती है। किन्तु न हम भोक्ता है, और न ही हम कर्ता। इस प्रकार अविद्या, काम और कर्म रूपा हृदयग्रंथि का मानों भेदन हो जाता है। सभी संशय तथा विपरीत धारणाओं की समाप्ति होकर अपनी ब्रह्मस्वरूपता में निष्ठा होती है।इस प्रकार कर्ता-भोक्ता जीव का निषेध होने पर जन्मादि के हेतुभूत संचित, आगामी कर्म समाप्त हो गएं। प्रारब्ध के होने तक शरीर चलता है। यह ज्ञान निष्क्रियता की ओर नहीं ले जाता है किन्तु समस्त प्रेरणाएं, चेष्टा तथा व्यवहार असंगता से, पूर्णता की अभिव्यक्तिरूप होता है। इस फलश्रुति के प्रतिपादन के साथ ही यह दृग्दृश्यशविवेक नामक ग्रंथ समाप्त हुआ। ओम् तत्सत्!!

विभूति दर्शन

गीता अध्याय : ९

राजविद्या राजगुह्य योग

राजविद्या राजगुह्य योग

गीता के आठवे अध्याय में भगवान ने विविध शुक्ल, कृष्णादि गतियों की चर्चा करी। उसमें पुण्यात्मा अपने पुण्यकर्म के फलस्वरूप स्वर्गादिरूप गति को प्राप्त करते हैं। किन्तु वही कर्म उपासना के साथ यदि निष्कामभाव से सम्पन्न किया जाएं तो वह ब्रह्मयोग की उत्कृष्ट गति की प्राप्ति का हेतु बनता है। हर व्यक्ति को अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए धर्माचरण का आश्रय लेना चाहिए। गृहस्थ का समाज, पशु, भिक्षुक आदि तथा पितृ के प्रति कर्तव्य होता है। अपने कर्म में यज्ञ, दान तथा तप का समावेश करने के द्वारा पुण्य अर्जित करता है। किन्तु उन सब का आश्रय यदि बाह्य अनुकुलता की प्राप्ति व व्यवस्था की

राजविद्या राजगुह्य योग

प्रधानता से करता है, उसमें यह धारणा है कि बाह्यविषय ही वास्तविक सुख का स्रोत है। उनकी गति भोग और ऐश्वर्य तक होती है। एवं जो जिसके प्रति मूल्य से प्रेरित होता है, उसे वैसी ही दुनिया प्राप्त होती है।

जो निष्कामभाव से इन्हीं सत्कर्म का आश्रय लेता है, तथा अपने इष्टदेव को जगदीश्वर मानकर उपासना की प्रधानता रखता है। वह निष्काम कर्म और उपासना के फलस्वरूप ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। स्वर्ग आदि की गति आवागमनवाली होती है, जब कि ब्रह्मलोक को प्राप्त करके वहां ब्रह्माजी के मुख से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके, ब्रह्माजी की आयु पर्यन्तं वहां रहता है और अन्त में ब्रह्माजी के साथ मुक्त हो जाता है। इस प्रकार दो गतियों की चर्चा हुई। किन्तु कर्म व उपासना का आश्रय लेकर कुछ

राजविद्या राजगुह्य योग

लोग अनित्य से दृष्टि हटाकर जगत के अधि
ष्ठान, नित्यतत्त्व की जिज्ञासा से युक्त होता
है। वह यहीं इसी मनुष्य शरीर में ज्ञान प्राप्त
करके मुक्त हो जाता है। नवें अध्याय में
भगवान उस भगवत् तत्त्वरूप ज्ञेय ब्रह्म तथा
भगवद्-भक्ति का विस्तार से निरूपण करते
हैं। इस अध्याय में ३४ श्लोक हैं। परमात्मा
का मूलतत्व निर्गुणस्वरूप की यहां चर्चा की
जा रही है।

'परमात्मा का ज्ञान सब से रहस्यमय
और सब से पावनकारी है।'

उपदेश आरम्भ करने से पूर्व भगवान् इस
ज्ञान की स्तुति करते हैं कि इस अत्यन्त
रहस्यमयगुह्य ज्ञान को विज्ञानसहित बता रहे
हैं। यह समस्त विद्याओं में श्रेष्ठ तथा परं
पवित्र, रहस्यमय है। यही सभी धर्म के आध
ारभूत है। भगवान इस दिव्य ज्ञान अर्जुन
को प्रदान कर रहे हैं, क्योंकि अर्जुन अनसूय

राजविद्या राजगुह्य योग

अर्थात् असूया नामक दोष से रहित हैं। असूय वह होता है, जो गुण में भी दोषदृष्टि से युक्त होता है। इस ज्ञान के फलस्वरूप समस्त अशुभों से मुक्त हुआ जाता है। जन्मादिरूप संसार ही अशुभ है। उसका कारण अपने स्वस्वरूप का अज्ञान ही है। ज्ञान की स्तुति का प्रयोजन श्रोता के मन में रुचि और उत्साह जगाकर ज्ञान का महत्व स्थापित करना है। क्योंकि जिज्ञासा व श्रद्धा के अभाव में यह ज्ञान लाभान्वित नहीं करता है। तथा जन्मादिरूप संसार अनवरत चलता है।

ज्ञान का उपदेश आरम्भ करते हुए भगवान अपनी सर्वव्यापकता बताते हैं। मया ततमिदं सर्व.... यह समस्त जगत हमारे अव्यक्त स्वरूप के द्वारा व्याप्त है। यह सब मुझ में उसी प्रकार से स्थित है, जैसे आकाश में

राजविद्या राजगुह्य योग

वायु सर्वत्र रहती है। साथ ही भगवान बताते हैं कि वे सब हममें हैं किन्तु हम उनमें नहीं है। अर्थात् सब हम पर आश्रित है किन्तु हमारा अस्तित्व उन पर आश्रित नहीं है।

'परमात्मा की सन्निधि में प्रकृति समस्त जगत का सृजन व विनाश करती है। परमात्मा उनसे असंग रहते है।'

भगवान कहते हैं कि यह समस्त जगत हममें ही स्थित है। वस्तुत: यह कथन भी एक जीव की दृष्टि का आश्रय लेकर कहा गया है। किन्तु परमात्मा की दृष्टि से देखें तो उनमें कोई जगत का अस्तित्व नहीं है। जिस प्रकार जल में लहरादि है, किन्तु जल की दृष्टि से देखें तो जलतत्त्व मात्र है। यही हमारी माया का प्रभाव है कि हममें नहीं होते हुए भी जगत की प्रतीति करवा देती है। उसके उपरान्त मानों हम ही समस्त जगत को धारण करते है, पोषित करते हैं, उनकी

राजविद्या राजगुह्य योग

आत्मा की तरह से हम ही विराजमान हैं। हम ही सब को धारण करते हैं, अपनी प्रकृति को धारण करके प्रत्येक कल्प की उत्पत्ति में उसका सृजन व कल्प के अन्त में विसर्जन करते हैं। यदि भगवान ने ही जगत का सृजन किया है तो भगवान को भी कर्म का बन्धन भी होगा! ऐसा संशय होने पर भगवान बताते हैं कि 'न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति।' हमें यह कर्म बांधते नहीं है, क्योंकि हम उससे अनासक्त व असंग हैं। ये सब हमारी मायाशक्ति द्वारा निर्मित है; जो कि हमारी अध्यक्षता में कार्य कर रही है। उसीसे यह जगत सतत परिवर्तित होता है।

हम इन सब से परे दिव्य स्वरूप तत्त्व हैं, किन्तु अज्ञानी व मोहित जीव हमारे उस दिव्य, अव्यय स्वरूप को नहीं जानने की वजह से हमें एक नाम-रूप मात्र में, मनुष्य

राजविद्या राजगुह्य योग

की तरह ही जानते हुए हमारी अवज्ञा करता है। उनका जीवन निरर्थक है, क्योंकि वह किसी भी प्रकार के पुरुषार्थ की सिद्धि करने में असमर्थ होता है। उससे विपरीत जो महात्मा है, वह ईश्वराभिमुख होकर ईश्वर की शरण ग्रहण करता है, और दैवी गुणों से युक्त होकर हमें समस्त भूतों के कारणभूत, अविनाशी जानकर अनन्यभाव से भजन करता हैं।

'योग अर्थात् अप्राप्त की प्राप्ति, क्षेम अर्थात् प्राप्त की रक्षा करना है।'

वे जिन रूपों में उपासना करते है, उसके बारे बताते हैं कि कोई ज्ञानयज्ञ का आश्रय लेता है, कोई भक्त हमें अपने से अपृथक् जानकर उपासना करता है तो कोई पृथक् जानते हुए, तथा कोई हमारी विश्वरूप से भी उपासना करते हैं।

राजविद्या राजगुह्य योग

हम ही जगत्कर्ता, जगत को धारण करनेवाले हैं। जगत् पिता भी हम हैं, और जगन्माता भी हम। हम ही समस्त यज्ञ, यज्ञकर्ता, यज्ञ का साधन व यज्ञांग हैं। समस्त कर्मफल के दाता तथा कर्मफल भी हम ही हैं। हम ही सृष्टि, विनाश हैं। इस प्रकार से हमारी उपासना की जाती है। उसमें जो निष्काम भक्त, अनन्यभाव से हमारा चिन्तन करते हुए निरपेक्ष, निश्चिंत होकर हमारा भजन करता हैं, उसके योग-क्षेम का वहन हम ही करते हैं।

किन्तु जो सकाम भाव से विविध भोग की कामना से युक्त होकर हमारी उपासना करता है, वह पुण्य का अर्जन कर, स्वर्गादिलोक को प्राप्त करता है, और उसके पुण्य का क्षय होने पर पुनः मर्त्यलोक को ही प्राप्त होता है। यद्यपि वे सब विविध देवताओं की आराधना

राजविद्या राजगुह्य योग

करके तत्-तत् फल की प्राप्ति करते हैं, किन्तु उनके माध्यम से हमारी ही आराधना करते हैं, क्योंकि हम ही यज्ञस्वरूप, यज्ञकर्म, सब की आत्मा, कर्मफलदाता व कर्मफल हैं। वो हमें जानता नहीं है, इसलिए वह तत्त्वज्ञान से भी वंचित रह जाता है और देवताओं के अनुरूप विधि-विधान का पालन करता है। जो जिसकी आराधना करता है, उनकी गति उन-उन देवता, पितृ आदि तक ही सीमित होती है, किन्तु जो हमें भजता है, वह हमें ही प्राप्त कर लेता है। और अन्ततः मर्त्यलोक

'कर्मजनित सभी लोक काल के रेड़ल्म में विद्यमान होने से आवागमन वाले हैं।'

से मुक्त हो जाता है। देवतादि के यजन में प्रयास भी बहुत है और फल सीमित है। जब कि कोई भक्तिभाव से पत्र, पुष्प, फल वा जल अर्थात् अपने सामर्थ्यानुरूप अर्पित करता है तो उनसे हम प्रसन्न होकर ग्रहण करते हैं।

राजविद्या राजगुह्य योग

ऐसा नहीं है कि हम किसी से पक्षपात करते हैं। हमें कोई न तो द्वेष्य है और न ही प्रिय। किन्तु जिसकी जो चाह होती है, उसीको प्राप्त करता है। जिस प्रकार अग्नि के जितने समीप जाते है, उतनी उष्णता प्राप्त होती है।

किसीने कैसे भी पाप किएं हो, किन्तु वह यदि भगवान की शरण में जाता है, तो वह साधू ही है, उसका अवश्य कल्याण होता है। अत: अर्जुन! तुम हमारी शरण में आओं। तुम्हारा मन-बुद्धि हममें ही लगाओ। जीवन में इसी महान लक्ष्य के लिए प्रेरित होकर अपने कर्म को हममें समर्पित करों।

विभूति दर्शन

(श्री रामचरित मानस पर आधारित)

श्री लक्ष्मण चरित्र

— १३ —

बन्दउं लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दण्ड समान भयउ जस जाका॥

श्री लक्ष्मण चरित्र

धनुर्भंग के पश्चात् परशुरामजी का आगमन होता है। इस प्रसंग में लक्ष्मणजी की भूमिका अत्यन्त विलक्षण और कठिन थी। उनके वार्तालाप से परशुराम का विक्षुब्ध होना तो स्वाभाविक ही था। पर यह एक ऐसा अवसर था, जब लक्ष्मण के प्रशंसक भी विचलित होकर उनकी आलोचना करने लग जाते हैं। जनकपुरवासियों से लेकर महाराज जनक तक इस अवसर पर भयभीत और असंतुष्ट होकर यह कह उठते हैं कि, 'छोट कुमार खोट बड़ भारी'। अभी अभी कृतज्ञता का ज्ञापन करने वाले राजा जनक तो श्री राघवेन्द्र से अनुरोध करते हैं कि वे लक्ष्मण को इस अनौचित्यपूर्ण कार्य से विरत करें।

श्री लक्ष्मण चरित्र

इतना ही नहीं लोकमत का सम्मान करने वाले राघवेन्द्र भी लक्ष्मण को 'नयन तरेर' कर देखते हुए दिखाई देते हैं। इस तरह छोटों से लेकर बड़ों तक सारा समाज जहां आलोचक बन जाए, वहां अपने मत पर अन्त तक डटे रहना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। पर शेषावतार लक्ष्मण सचमुच ही अपनी धारणा पर अड़िग रहें। वे प्रशंसा और निन्दा से पूरी तरह उपर उठ चुके थे। उन्होंने वही किया जो उनकी दृष्टि में परशुराम सहित सारे समाज के लिए कल्याणकारी था। इसका परिणाम आश्चर्यजनक रूप में सामने आया। उनके सब से प्रखर आलोचक परशुराम ही उनके सब से बड़े प्रशंसक बन गएं। अपनी पराजय को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करते हुए वे श्रीराम के साथ साथ लक्ष्मण से भी क्षमा-याचना करते हैं। उस समय वे इन दोनों भाईयों को जो उपाधि देते हैं, वह राघव के लिए तो सार्थक प्रतीत होती है, पर ऐसा लगता है कि लक्ष्मण

श्री लक्ष्मण चरित्र

के लिए यथार्थ नहीं है। वे कहते हैं 'अनुचित बहुत कहेउं अज्ञाता, क्षमहु क्षमा मंदिर दोउ भ्राता'। राघव के साथ लक्ष्मण को भी क्षमा मन्दिर कहना बड़ा अटपटा प्रतीत होता है।

लक्ष्मण के चरित्र में अनेक विलक्षण गुण विद्यमान हैं। पर वे क्षमाशील हैं, इसे सम्भवतः किसी के लिए स्वीकार कर पाना कठिन है। और फिर इस प्रसंग में तो उनका व्यवहार 'क्षमाशीलता' के स्थान पर 'ईंट का उत्तर पत्थर से' के प्रहार के रूप में दिखाई देता है। पर परशुराम जैसे असहिष्णु और प्रखर आलोचक उनमें क्षमा का दर्शन करते हैं, तो उसे सरलता से नकारा भी तो नहीं जा सकता।

—१७—

ऋषीकेश
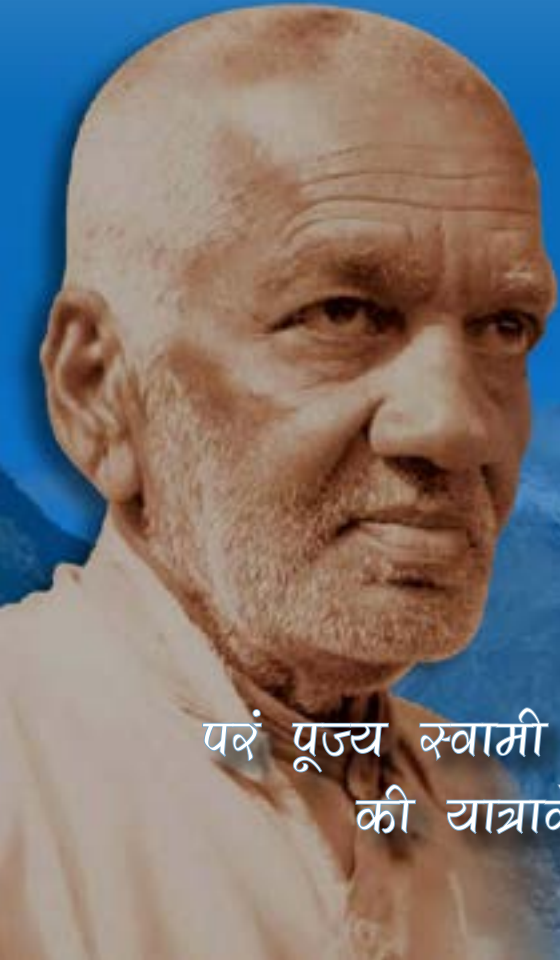
परं पूज्य स्वामी तपोवन महाराज
की यात्राके संस्मरण

जीवनमुक्त
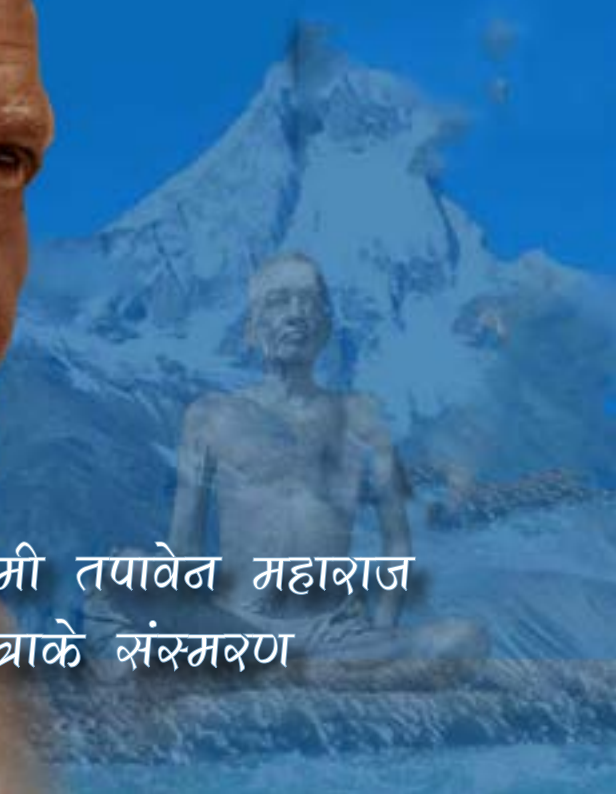
टहरी से एक विशाल मैदान से होकर रास्ता उपर जाता है। वैशाख का महिना होने से गेहूं की फसल काटकर श्यामाक आदि अनाज बोये गये है। अधिक वृक्षों के अभाव में चारो ओर उंचाई पर उठी हुई इन नग्न पर्वत राशियों, उनके पार्श्व भागों में इधर उधर पास-पास स्थित ग्राम पंक्तियों तथा केदारराजियों का दृश्य इस मैदान के बीच से चलनेवाले एक रसज्ञ के मन को अधिकाधिक आकृष्ट करता रहता है। लीजिए, इस विशाल मैदान को पार करने पर, अर्थात् टहरी से चार मील पश्चिम की ओर, 'मादगून' नामक गांव दिखायी देता है। यहां स्वामी रामतीर्थ जी कुछ काल तक रहे थे।

यहां से गंगा के दर्शन करते हुए पर्वत प्रांतों से फिर आगे की ओर बढ़िएं। कई पहाडों और

जीवन्मुक्त

जहां तहां कई गांवों को पार करते हुए सत्ताईस मील आगे जाने पर वहां 'धरासु' नामक एक स्थान आ जाता है। यहां से जम्नोत्री की ओर एक मार्ग तथा उत्तरकाशी से होकर गंगोत्री के लिए दूसरा मार्ग निकलता है। धरासु से पर्वत नितम्बों से होकर भागीरथी के किनारे किनारे नौ मील उपर की ओर यात्रा करने पर 'डूण्डा' नामक एक पवित्र स्थान पर पहुंच जाते हैं। इस प्रदेश के पौराणिक नाम का निर्णय करना अब असंभव हैं, तो भी यह अनुमान किया जा सकता है कि पुरातन काल में यह ऋषियों के विहार से पवित्र एक तपोवन था। क्योंकि यहां से दो मील की दूरी पर 'उद्दालक' का आश्रम स्थान दिखायी देता है। उद्दालक श्वेतकेतु के पिता, ब्रह्मविद्या उपदेष्टा तथा छन्दोग्योपनिषद् के एक प्रसिद्ध ऋषि पुंगव थे। उद्दालक महर्षि तथा उनकी शिष्यमंडली के पादपांसुओं से पवित्र इस प्रदेश में पहुंच जाने पर मेरा मन कई उत्कृष्ट भावनाओं में निमग्न हो जाता था। कभी कभी तो मैं भक्ति और आदर से पुलकित शरीर के साथ अत्यधिक कृतार्थ होकर उस आश्रम भूमि की ओर देखते हुए आत्मविस्मृत हो मार्ग में चिरकाल तक बैठा ही रह जाता था। इस स्थान को पार कर फिर चार मील आगे की ओर चले

जीवन्मुक्त

जाए तो वहां कुछ दूरी पर गंगा जमुना नदियों के मध्यवर्ती एक पर्वत शिखर पर एक अति सुन्दर आश्रम दिखायी देता है, जहां रेणुकादेवी के साथ जमदग्नि महर्षि विराजमान थे।

यहा से पुनः एक मील आगे बढें तो वहां गंगातट पर कपिलमुनि का आश्रम नजर आता है। सांख्यशास्त्रकर्ता कपिल भगवान् के स्थान हरिद्वार तथा गंगासागर में भी दृष्टिगोचर होते हैं। यों हिमालय शिखरों पर तथा निम्नदेशों पर इधर उधर कई ऋषि पुंगवों के भिन्न भिन्न स्थान दिखायी पडते है। चूंकि एक ही ऋषि के जहां तहां भिन्न भिन्न स्थान दिखायी देते हैं, अतः श्रद्धाविहीन लोगों का यह आक्षेप है कि वे सब केवल श्रद्धालुओं की कल्पनामात्र हैं, पर ऐसा कहना ठीक नहीं है। अनेक ऐसे स्थान कल्पित भी हो सकते हैं, किन्तु ऐसा विश्वास करने में भी कोई आपत्ति नही होनी चाहिए कि एक ही ऋषि हिमालय में जहां तहां रमणीय स्थानों पर जब तब तपश्चर्या का अनुष्ठान करते हुए रहा करते थे। कपिलाश्रम से एक मील से ज्यादा फिर उपर चढ जाने पर वहा उत्तरकाशी की पश्चिमी सीमा पर वरुण नामक तीर्थनदी एक बडी जल धारा के रूपमें उत्तर से दक्षिणकी ओर बह रही है।

पौराणिक गाथा

खाण्डवप्रस्थ का निर्माण

खाण्डवप्रस्थ का निर्माण

पाण्डवों ने खण्डहर जैसे खाण्डववन को कैसे सुन्दर खाण्डवप्रसथ बनाया, उस सन्दर्भ में महाभारत में प्रसंग प्राप्त होता है। जब कौरवों और पाण्डवों के मध्य में राज्य के बटवारे को लेकर कलह हो रहा था। तब मामा शकुनि ने खण्डहर जैसे खाण्डववन को पाण्डवों के देकर शान्त कर दिया था।

खाण्डववन में पहले किसी समय एक नगर बसा हुआ था। फिर वह नगर नष्ट होकर मात्र खण्डहर और बीहड़ वन ही बचा हुआ था। अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण के साथ उस खाण्डववन में जाकर देखते हैं कि यह अत्यन्त खण्डहर व बीहड़ सा वन है। तब अर्जुन भगवान से पूछते हैं कि इसे हम अपनी राजधानी कैसे बना सकते हैं? उस पर श्रीकृष्ण विश्वकर्मा का आवाहन करते हैं। विश्वकर्मा के प्रकट होने पर श्रीकृष्ण उनसे

खाण्डवप्रस्थ का निर्माण

कहते हैं कि यहां पाण्डव अपना एक नगर बसाना चाहते हैं, उसके लिए उन्हें सहायता चाहिए। यह सुनकर विश्वकर्मा प्रसन्न होकर उन्हें मयासुर से मिलवाते हैं। मयासुर भी यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होता है और भगवान, विश्वकर्मा और पाण्डवों को एक खण्डहर में ले जाता है; जहां एक स्वर्णरथ होता है।

मयासुर कहता है कि यह स्वर्णरथ पूर्वकाल में महाराज सोम का हुआ करता था। यह रथ आपको मनचाही जगह पर ले जाने में सक्षम है। उसमें एक गदा रखी हुई थी। उस गदा को दिखाते हुए कहता है कि यह कौमुदकी गदा है, उसे भीम के अलावा और कोई भी उठाने में सक्षम नहीं है। इसके प्रहार की शक्ति अद्भुत और अलौकिक है।

मयासुर गदा दिखाने के बाद एक धनुष के पास ले जाकर कहता है कि यह गाण्डीव धनुष है। यह अत्यन्त दिव्य और अद्भुत है। इसे दैत्यराज वृषपर्वा ने भगवान शंकर की आराधना करके उनसे प्राप्त किया था। भगवान उसे अर्जुन को देते हुए कहते हैं कि इस दिव्य

खाण्डवप्रस्थ का निर्माण

धनुष पर तुम बाणों का अनुसंधान कर सकोगे। उसके बाद मयासुर अर्जुन को अक्षय तरकस सोंपता है और कहता है कि इस तरकस में कभी भी बाण समाप्त नहीं होते है। इसे स्वयं अग्निदेव ने दैत्यराज को दिया था। ऐसा दिव्य, अलौकिक तरकस और धनुष धारण करने के लिए विश्वभर में अर्जुन ही एक मात्र महा पात्र है। मयासुर कहता है कि आज से यह समस्त सम्पत्ति का अधिकारित्व हम पाण्डवों को सोंपते है।

उस पर भगवान अत्यन्त प्रसन्न होकर कहते हैं कि; 'मयासुर! हम तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हैं। जब भी तुम संकटकाल में हमारा स्मरण करोगे तो हम और अर्जुन शीघ्र ही वहां पहुंच जाएंगे। तत्पश्चात् मयासुर, विश्वकर्मा और पाण्डव मिलकर खाण्डवप्रस्थ नगर का निर्माण करते हैं।

Mission & Ashram News

Bringing Love & Light
in the lives of all with the
Knowledge of Self

आश्रम समाचार

पूज्य गुरुजी का संन्यासदीक्षा दिन

१० अक्टूबर २०२१

आश्रम समाचार
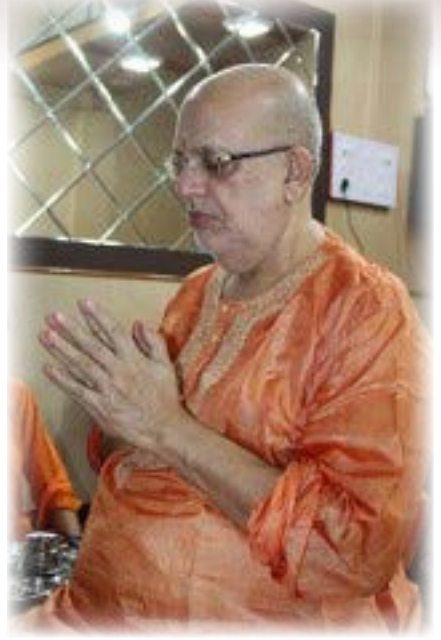
पादुका पूजन

प. पू. गुरुदेव स्वामी
चिन्मयानन्दजी

आश्रम समाचार

आश्रम समाचार

पादुका पूजन

काम्यानां कर्मणां न्यासं
संन्यासं कवयो विदुः।।

आश्रम समाचार

पू. गुरुजी से
आशीर्वाद प्राप्ति

आश्रम समाचार

तस्मै श्री गुरवे नमः ।।

आश्रम समाचार

तत्त्वज्ञानात् परं नास्ति तस्मै श्री गुरवे नमः।।

आश्रम समाचार

तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

आश्रम समाचार

१४ अक्टूबर

सुन्दरकाण्ड ज्ञानयज्ञ समापन

आश्रम समाचार

गंगेश्वर महादेव अभिषेक

सुन्दरकाण्ड यज्ञ समापन

आश्रम समाचार

सुन्दरकाण्ड
यज्ञ समापन

गंगेश्वर महादेव
अभिषेक

१४ अक्टूबर
२०२१

आश्रम समाचार

ओंकारेश्वर यात्रा

स्वल्पाहार विश्राम

आश्रम समाचार

नमामि देवि नर्मदे।।

16th Oct
2021

आश्रम समाचार

ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग

आश्रम समाचार

ओंकारेश्वर
यात्रा

16th Oct 2021

आश्रम समाचार

ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग दर्शन / पूजा

आश्रम समाचार

Heritage Train

Paatal Paani

आश्रम समाचार

आश्रम समाचार

Picnic at Kalakund

आश्रम समाचार

Feeding the Vaanar sena

आश्रम समाचार

Kids enjoying the rides

आश्रम समाचार

Trip to Van Vihar-Bhopal

आश्रम समाचार

Lovely Bird-sighting

5th Oct 2021

Internet News

Talks on (by P. Guruji) :

Video Pravachans on YouTube Channel

- ~ Sundar Kand Pravachan
- ~ Monthly Satsang Videos
- ~ Prerak Kahaniya
- ~ Eksloki Pravachan
- ~ Sampoorna Gita Pravachan
- ~ Kathopanishad Pravachan
- ~ Shiva Mahimna Pravachan
- ~ Hanuman Chalisa
- ~ Atma Bodha

Audio Pravachans

- ~ Prerak Kahaniya
- ~ Atma Bodha
- ~ Sundar kand Pravachan

Vedanta Ashram YouTube Channel

Monthly eZines

Vedanta Sandesh - Nov '21

Vedanta Piyush - Oct'21

आश्रम / मिशन कार्यक्रम

प्रेरक कहानियां
(ओनलाईन)

YouTube चेनल पर प्रसारण

आश्रम महात्माओं के द्वारा

प्रतिदिन प्रातः ७.00 बजे

(मंगलवार से शनिवार)

मुण्डकोपनिषद् प्रवचन
(शांकर भाष्य)

आश्रम के संन्यासियों के लिए

पूज्य गुरुजी स्वामी आत्मानन्दजी